

श्रीवृन्दारण्यविलासिनौ जयतः

श्रीमद्राधाकुण्डस्तवः

माहङ्मूढहृदन्धकारशमनी त्रैलोक्यसंख्यापिनी
सद्भक्ताश्रुपयोनिधेरतितरां संबद्धिनी सन्ततम् ।
स्वप्रेमामृतवर्षिणी निजजनापीडोष्णताकर्षिणी
कान्तिगौरमुकुन्दपादनखरेन्दूनां प्रपुष्णातु नः ॥ १ ॥
नीचस्यापि मतिः स्वकीयविलसद्ग्रन्थावलोक्यता
रम्या यैः समकारि मेऽद्य करुणापूर्णान्तरेणोज्ज्वलैः ।
तान् राधांघ्रिसरोजदास्यरसिकान् श्रीरूपगोस्वामिनो
वन्दे गोपमहीपसूनुचरिताम्भोधौ निमग्नान् सदा ॥ २ ॥

श्रीश्रीगौरहरि जयति

मुक्त समान मूढजन के हृदयान्धकार की नाशकारिणी,
तीन लोक में परिव्याप्ता, निरन्तर सद्भक्तजनों के अश्रु समुद्र को
अत्यन्त बढ़ाने वाली, निज प्रेमामृत वर्षणशील, निज जनों की पीड़ा-
जनित उष्णता को आकर्षण करके शान्त करने वाली, श्रीगौरांग हरि
के पादनख चन्द्रमाओं की सरस कान्ति हम सब का परिपोषण करें ॥ १ ॥

हम निरन्तर राधिका चरण कमलों के दास्यरस में रसिक,
गोपराजनन्दन के चरित्र सागर में निमग्न, श्रीरूपगोस्वामिमहोदय की
वन्दना करते हैं । जिन्होंने आज करुण हृदय होकर उज्ज्वल कृष्ण-
भक्तिरसों के द्वारा मुक्त नीच की मति को अपने विराजमान ग्रन्थों के
अवलोकन में उद्यत कराते हुए मनोहर बना दी है, अर्थात् उन की
कृपा से ही मेरी मन्दबुद्धि उनके द्वारा विरचित उज्ज्वलनीलमणि
आदिक ग्रन्थों के अवलोकन में महान् समर्थ हुई है ॥ २ ॥

श्रीमद्गोविन्ददेवाचर्चनपरमनसः प्रेमपीयूषमत्तान्
स्वीयस्वान्तव्रजेन्दुप्रणयचयरसाम्भोधिर्वर्षाविधातृन् ।
श्रीराधाकुण्डवासप्रदवरकरुणान्माहशान्धाश्रयश्री-
पादाब्जान् वल्लवेन्द्रात्मजगुणनिरतान् श्रीगुरुनानतामि ॥३॥
यानाश्रित्य विशुद्धभावभरतो वृन्दावने मानवाः
के राधाव्रजराजसूनुकरुणां नापुः परैर्दुर्लभाम् ।
येऽस्मान् श्रीवृषभानुजांघ्रिनलिनाशक्तानकुर्वन् भृशं
तान् श्रीमत् पितृपादपङ्कजगतान् रेणुत्रयमस्कुर्महे ॥ ४ ॥
वेदान्तादिकशास्त्रवृन्दवलिता लोके तु के पण्डिताः
श्रीमद्भागवतं रसाम्बुधिमहो सन्ति ब्रुवन्तो नहि ।

श्रीगोविन्ददेव के अर्चनपरायण, प्रेमपीयूष पान से उन्मत्त,
निज हृदय में व्रजचन्द्रमा के प्रणयरस सागर की वर्षा का धारण करने
वाले, श्रीराधाकुण्ड वास प्रदान में प्रवर करुण अर्थात् जिनकी वर
करुणा से श्रीराधाकुण्ड वास मिलता है, मुझ जैसे अन्धजन के आश्रय
स्वरूप श्रीचरण कमल श्री के धारणकारी तथा गोपेन्द्रात्मज की
मनोहर गुणावली में परम अनुरक्त, श्रीगुरुदेव को नमस्कार कर
रहा हूँ ॥ ३ ॥

जिनका आश्रय करके ऐसा कौन मनुष्य है कि जो वृन्दावन
में विशुद्ध भावपरायण होकर औरों से दुर्लभ राधाव्रजराजनन्दन की
करुणा को प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् जिनके आश्रय से सब ने करुणा की
प्राप्ति की तथा जिन्होंने श्रीवृषभानुनन्दिनी के चरणकमलों में हम सब
को परम आसक्त किया है, उन श्रीपिता के पादपङ्कज स्थित रज को हम
बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

इस लोक में वेदान्तादि शास्त्रों में चतुर कौन से पण्डित नहीं
हैं कि जो रससागर श्रीमद्भागवत का आश्रय नहीं करते हैं अर्थात्

गोष्ठेन्द्रात्मजभक्तमानववरेष्वेतस्य रूपं सदा
चध्वा ये किल दर्शयन्ति जनकांस्तानन्वहं संभजे ॥ ५ ॥
गान्धर्वोपदपद्मशक्तमनसां येषां कथासंश्रवाद्
गोपेन्द्रात्मजकेलिसंरतप्रियादातादयो वैष्णवाः ।
विभ्रंत्यन्वहमन्तरोल्लसदति प्रेमोद्गतान्गुदगले
रोमाञ्चादिकसार्विकान् निजपितृस्तान्नौमि कृष्णप्रियान् ॥६॥
नो दृष्ट्वा लवमात्रमप्यनुपमान् यान् वल्लवेन्दुप्रिया
वृन्दारण्यनिवासिनः खलु सदा मुह्यन्ति रागाकुलाः ।
माहङ्गीचतमोऽपि यत्करुणयैवामुं स्तवं राधिका-
कुण्डस्य प्रसभं करोति जनकास्ते पान्तु नः प्रत्यहम् ॥ ७ ॥

सब कोई रससागर श्रीभागवत का गान करते हैं । आपने मानो तो
भागवत के स्वरूप को व्याख्यादिकों से बाँध कर मूर्तिमान करके उसे
व्रजराजनन्दन के भक्तजनों को दिखला दिया है । उन पितृ चरणोंका
हम भजन करते हैं ॥ ५ ॥

गोपराजनन्दन के केलिरस में निरत श्रीप्रियादास आदिक
वैष्णवजन, श्रीराधिका के चरण कमलों में आसक्त चित्त जिनकी
भागवतव्याख्या के संसर्ग से रोमाञ्चादि सार्विकभावों का धारण कर
अन्तर में प्रचुर प्रेमानन्द को प्राप्त हुए हैं, श्रीकृष्ण के परमप्रिय उन
निज पिता को हम नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥

जिन को निमिष मात्र नहीं देखने पर वृन्दावन निवासी,
कृष्णचन्द्र के प्रिय भक्तगण विरह में व्याकुल होकर मोह को प्राप्त हो
जाते हैं तथा जिनकी करुणा से ही नीच से नीच हम इस राधाकुण्ड-
स्तव की रचना में समर्थ हो रहे हैं वे उपमा से रहित श्रीपितृचरण
हमें निरन्तर रक्षा करें ॥ ७ ॥

यां दृष्ट्वा शक्तचित्तः किरति नहि मनागोकुलस्त्रीसमूहे
सोमाभादौ स्वदृष्टिं प्रणयविलासितां घूर्णितो नन्दसूनुः ।
अन्यत् किं सर्वकैलिं त्यजति मनसि यां संविचार्योपिकृष्णो
गान्धर्वा प्रेमपर्वोचितमतिमनिशं हन्त वन्दामहे ताम् ॥ ८॥

नीलमञ्जुलनिचोलसंवृतां नन्दसूनुगतप्रेमसंभृताम् ।
वल्लवीनिवहगर्वनाशिनीं राधिकां खलु भजे विलासिनीम् ॥ ९॥

राधा रूपगुणैरगाधविभवा गोविन्दवाचाहरी
वृन्दाण्यविलासिनी सुमुदितैरालीजनैर्हासिनी ।

अब ग्रन्थकार चार श्लोकों के द्वारा श्रीराधिका की स्तुतिरूप
मंगलाचरण करते हैं—जिनके दर्शन करके आसक्तहृदय नन्दनन्दन
घूर्णयमान हो जाते हैं और अन्य व्रजरमणियों में तथा श्रेष्ठ श्रीचन्द्रा-
वली के प्रति भी अपनी प्रणय विलास दृष्टि को नहीं डारते हैं और
अधिक क्या कहूँ, जिनको मन में स्मरण करके वे श्रीकृष्ण समस्त
क्रीड़ाविनोद का त्याग कर देते हैं, अहो ! प्रेम उत्सव में उल्लसित
मतिवाली उन श्रीगान्धर्वा राधिका जी की हम वन्दना करते हैं ॥ ८॥

मनोहर नीलाम्बरधारिणी, नन्दनन्दन में महान् प्रेमधारिणी,
व्रजांगनाओं के गर्व की नाशकारिणी, परमविलासिनी श्रीराधिका का
हम निश्चय ही भजन करते हैं ॥ ९ ॥

वे श्रीराधिका आनन्द के साथ मुझे अपने दास्यरस का प्रदान
करें अर्थात् प्रसन्न होकर मुझे अपनी दासी बना लें । जो रूप-गुणों
में अगाध वैभवशालिनी हैं तथा गोविन्द की मनोवाधा को हरण करने
वाली और वृन्दावन में निरन्तर विलास कारिणी हैं, परम प्रसन्ना

कारुण्यामृतवर्षिणी निजजने नन्दात्मजे तर्पिणी
स्वीयं दास्यरसं मुदा ददतु मे द्राग् दीनदैन्यासहा ॥ १०॥
श्रीगोविन्दासिताङ्गद्युतिमिलितलसद्गौरदीप्तिच्छटाभिः
पूर्णा घूर्णाकुलाक्षी व्रजपतितनयप्रेमचूर्णातिमत्ता ।
केलीपु जैकमूर्तिः प्रणयविरचिताशेषकामाभिपूति
वृन्दाण्येश्वरी मे वितरतु सततं राधिकानन्दवृन्दम् ॥ ११॥
श्रीराधाकुचकुम्भकुङ्कुमलसद्वत्स्थलान्तर्लुठद्
हारं मञ्जुमयूरपिञ्जमुकुटं गोपालिकानां प्रियम् ।
केयूरादिविभूषणैः सुलसितं वंशीनिनादामृत-
प्रोद्यद्गोकुलनागरीमनसिजं वृन्दावनेन्दुं भजे ॥ १२॥

सखियों से हास्यमुखी तथा अपने जनों के ऊपर कारुण्यामृत की वर्षा
करने वाली हैं और नन्दनन्दन में परम उत्कण्ठा को देने वाली हैं ।
जो गरीबों के दैन्य को नहीं सह सकती हैं ॥ १० ॥

वे वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका मेरे लिये निरन्तर आनन्द-समूह
का वितरण करें । जो श्रीगोविन्द के श्यामांग कान्ति से युक्त शोभाय-
मान गौरांग कान्ति छटा से परिपूर्ण हैं, प्रेम से घूर्णयमान नेत्रवाली
हैं, व्रजराजनन्दन के प्रेम पराग के आस्वादन में उन्मत्ता हैं, केवल
केलिपुञ्ज की मूर्ति हैं तथा प्रणययुक्त अशेष कामनाओं की परिपूर्ति
करने वाली हैं ॥ ११ ॥

अब ग्रन्थकार चार श्लोकों के द्वारा श्रीकृष्ण की वन्दनारूप
मंगलाचरण करते हैं—श्रीराधिका के कुचकुम्भ कुङ्कुमरस से शोभाय-
मान वत्स्थल पर मनोहर चञ्चलमाला के धारणकारी-मनोहर मयूर-
पुच्छों से विरचित मुकुट वाले, गोपांगनाओं के प्रिय, कृष्ण, बाजूबन्द
आदि भूषणों से विभूषित, वंशीनादामृत के द्वारा गोकुलरमणियों के
काम को बढ़ाने वाले, वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण का हम भजन
करते हैं ॥ १२ ॥

वृन्दारण्यविज्ञासिनी समुदयरूपान्वितैर्वेष्टितं
गान्धर्वामुखचन्द्रदर्शनभवानन्देन संघूर्णितम् ।
कृष्णं वेणुनिनादवैभवभरोन्माद्यद्ब्रजस्त्रीगणे
भावोल्लासधरं भजामि सततं गोपालपालात्मजम् ॥१३॥

राधाकुण्डविलासशक्तहृदयं गान्धर्विकाया वशं
रम्यैर्नादचयैः सदा मुरलिकां पूर्णं दधानं मुखे ।
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीं प्रणयतः संसेव्यमानं मुदा
गोविन्दं ब्रजनागरीभिरसकृत्प्रार्थ्येक्ष्यं नौम्यहम् ॥१४॥

श्रीराधा यर्ह्यवाधामलनिजसरसीपीतपद्मेषु गुप्ता
स्वालीरालीनभृंगेष्वतिशुचिहसिता वारयन्ती करेण ।

परम रूपवती, वृन्दावनविलासिनी गोपांगनाओं से परिवेष्टित,
श्रीराधिका के मुखचन्द्र दर्शन से उत्पन्न आनन्दाधिक्य के द्वारा
घूर्णयमान, वंशीनादवैभव से उन्मादित, ब्रजरमणियों के प्रति
भावोल्लास का धारण करने वाले, गोपराज के नन्दन श्रीकृष्ण का
हम भजन करते हैं ॥१३॥

राधाकुण्ड में विलास करने के लिये आसक्त हृदय, राधिका
के वशीभूत, मनोहर नादामृत से परिपूर्ण मुरली को मुखारविन्द में
निरन्तर धारण करने वाले, प्रणय सहित आनन्द युक्त होकर वृन्दा-
वनेश्वरी श्रीराधिका की सेवा में तत्पर तथा ब्रजनागरियों के बारम्बार
प्रार्थ्यमान नेत्रकमलों के द्वारा शोभायमान श्रीगोविन्द को हम
नमस्कार करते हैं ॥१४॥

जिस समय (जलविहार के समय) श्रीराधिका, भृंगों से
परिवेष्टित पीतकमलावली से विभूषित निज पवित्र सरोवर श्रीराधा-
कुण्ड में जलविहार करती हुई कमलवन में छिप गयीं तथा सखियाँ

विन्दन्निन्दिन्दिर इव युतां माधवीं तर्हि गन्धैः
पायाद्गायाभिपूर्णो ब्रजपतितनयः प्राप्तमोदः स्वकान्तः ॥१५॥

यस्मिन् रम्यनिकुंजपुंजवसतिः श्रीराधयाऽगाधया
रूपेणाप्रतिमामितैर्गुणचयै रभ्यक्तया मादितः ।
आभीरेन्द्रसुतो युतो विजयते ह्याभीरिकाभीरसात्
तं वृन्दाविपिनं सुखान्यनुदिनं दद्यादिनं धामसु ॥१६॥

यल्लावण्यभरं विलोक्य गुणिनां मौलिर्ब्रजेन्द्रात्मजो
मत्तो हन्त शिरोविधूननमसौ धत्ते मुहुर्विस्मितः ।
तस्यास्ते वृषभानुजासरसिके कर्तुं स्तवं मन्दधी-
रद्य प्रारभते जनोऽयमभितो निर्वाहयामुं स्वकम् ॥१७॥

मनोहर हँसती हुई हाथों से भ्रमरों का निवारण किया तौ उस समय
भ्रमरावली गन्ध से परिपूर्ण माधवीलता में बैठ गयीं तथा श्रीकृष्ण
परम प्रसन्नता को प्राप्त हुये । राधाकुण्ड जलविहारी वे नन्दनन्दन
श्रीहरि हम सब निज जनों की रक्षा करें ॥१५॥

जिसके मनोहर निकुंजपुंज में विराजमान होकर अगाध रूप
तथा अनुपम अमित गुणों से परिपूर्ण श्रीराधिका के सहित श्रीगोपेन्द्र-
नन्दन, गोपियों के द्वारा रस से उन्मादित होकर विजय को प्राप्त हो
रहे हैं वह श्रीवृन्दावन निरन्तर सुखों का प्रदान करे ॥१६॥

अब ग्रन्थकार निज ध्येय श्रीराधाकुण्ड स्तव का प्रारम्भिक
वर्णन करते हैं । जिसके लावण्यातिशय का दर्शन करके गुणियों के
सिरोमणि ब्रजराजनन्दन स्वयं उन्मत्त होकर मस्तक
बारम्बार विस्मित हो जाते हैं, ऐसे जो तुम स्तव रक्षा करें । जिसके
सरोवर ! आज यह मन्दमति स्तव करने के लिये को वृन्दावनेश्वरी
अतः तुम स्वयं ही इसका निर्वाह करो ॥१७॥ देखने पर भी

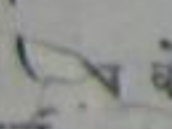
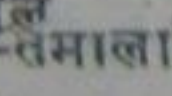
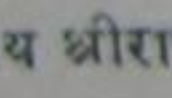
श्रीराधासरसि त्वदीयमहिमा नास्मादृशां गोचर-
स्वत्कारुण्यबलेन साहसमहं कुर्वे तथाप्यूहृतः ।
तत्त्वं कारय चित्रसंस्तवमिमं स्वीयं निजेशां सदा
गान्धर्वा मम चित्तकन्दरतटे वात्सल्यतः प्राणय ॥१८॥

कृष्णक्रीडितरंजिताखिलपदा वैदूर्यहीरादिभिः
सोपानेषु विभूषिता विरचितानन्दा व्रजप्रेयसः ।
आलीपुंजनकुञ्जवृन्दवलिता नालीकसंराजिता
श्रीराधानलिनी निलीनमनसो नन्दात्मजे नः क्रियात् ॥१९॥

श्रीगोपालवरेण्यपालमभितः सत्कुंजजालश्रिया
युक्तं तालमुखद्रुमालिलसितं वृन्दादिकालिप्रियम् ।

हे श्रीराधिकासरसि ! तुम्हारी महिमा हम सब के अगोचर
है तो भी तुम्हारी करुणा के बल से हम इस प्रकार साहस कर रहे
हैं । इसका समाधान तुम स्वयं करो । एक कृपा और भी करो । तुम
अपनी वात्सल्यता के द्वारा निज स्वामिनी श्रीराधिकाजी को मेरे चित्त-
कन्दरा के तट में विराजमान करा दो । जिससे हम समर्थ होकर तुम्हारे
इस कार्य को कर सकें ॥१८॥

सर्वत्र श्रीकृष्णक्रीडाओं से परिरन्जिता, वैदूर्यमणि-हीरादि
विविध रत्नों से जटित सीढ़ियों से विभूषिता, व्रजप्रिय श्रीकृष्ण की
आनन्द देने वाली, सखियों के निकुंज समूह से परिवेष्टिता, कमला-
वली से शोभायमाना श्रीराधिकासरसी हम सबको नन्दनन्दन में
नमस्कार ॥१९॥

जिस समय  के द्वारा संरक्षित, मनोहर कुंजों की शोभा
परिवेष्टित पीतकमलावली -मालादि वृक्षावली से उल्लसित, वृन्दादिक
कुण्ड में जलविहारी -प्रिय श्रीराधाकुण्ड, तुम सब की रक्षा करें । जिसके

सोपानावलिलग्नचन्द्रमणिजै नीरैर्विधोरुद्गमे
सानन्दं मिलदूर्म्मिमालकमलं कुण्डं सदा पातु वः ॥२०॥
ब्रह्मेन्द्रप्रमुखैः सुरेशानिचयै र्यस्याः सरस्या ध्रुवं
नो गम्यो महिमाऽस्ति मादृशानरप्राप्येक्षणायाः सदा ।
वृन्दारण्यपुरन्दरोऽपि सुदरो गान्धर्विकाज्ञां विना
किञ्चिद्धन्त निजेच्छया न कुरुते यत्रैव सा पातु वः ॥२१॥
गोविन्दस्य विलासकौतुकभराद्गुप्तस्य यस्या गृहे
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरी व्रजविधोरन्वेषणं कुर्वती ।

चार ओर सीढ़ियों में चन्द्रकान्तमणि जड़े हुए हैं । चन्द्रमा के उदय
होने पर वे सब पिघल कर जल बनकर कुण्ड में गिरने लगते हैं, अतः
उन जलों से श्रीकुण्ड परम मनोहरता को धारण कर लेता है । फिर
जल उछल कर तरंग रूप से कमलों का स्पर्श कर लेता है ॥२०॥

जिस सरोवर की महामहिमा को ब्रह्मा-इन्द्रादि प्रधान भेष्ट
देवतागण नहीं जानते हैं उस राधा सरोवर के दर्शन के लिये मुझ
जैसा क्षुद्रजन प्रार्थना करता है यह अत्यन्त धृष्टता है । परन्तु श्रीसरोवर
की कृपा ही परम सम्बल होकर इस प्रार्थना को पूर्ण कर देती है ।
अहो सरोवर की महिमा अति अद्भुत है । वृन्दावन के पुरन्दर स्वयं
नन्दनन्दन ही राधिका के आदेश के बिना अपनी इच्छा से इस
सरोवर में कुछ नहीं कर सकते हैं अर्थात् उसमें उनका कोई स्वतन्त्र
अधिकार नहीं है । इस प्रकार महिमा वाला राधा सरोवर तुम सब
की रक्षा करें ॥२१॥

वह राधिका सरोवर हम सब की निरन्तर रक्षा करें । जिसके
गृहों में कौतुक के वश छिप जाने वाले श्रीगोविन्द को वृन्दावनेश्वरी
श्रीराधिका ढूँढ़ती रहती हैं तथा व्रजचन्द्र प्राणवल्लभ को देखने पर भी

दृष्ट्वाऽपि प्रियमास्थितं सुललितं संनिश्चलाङ्गं नहि
 ज्ञातुं शक्तियुता बभूव सरसी सा पातु नः प्रत्यहम् ॥२२॥
 धर्माधर्मनिर्णयेषु निपुणाः कुर्वन्तु धर्मं नराः
 केचित् संकलयन्तु योगमपरे ब्रह्मस्वरूपे मनः ।
 अन्ये भक्तिसुखानुभूतिजनितामोदा भवन्तु स्फुटं
 नान्यद्वाञ्छति मे मनस्तु सरसी श्रीराधिकाया विना ॥२३॥
 श्रीराधासरसीगुणैस्तु रसना भूयात्सदालंकृता
 तामेवानिशमुद्भट-प्रणयतश्चित्तं मम ध्यायतु ।
 शीर्षं मे कुरुतां प्रणामविततिं तस्यां सुदैव्यावृतां
 कर्णौ संशृणुतां मम प्रतिदिनं तस्यां भृशं सस्तुतिम् ॥२४॥

उन्हें नहीं पहचानती हैं । क्योंकि श्रीहरि निश्चल शरीर होकर वहाँ
 इस प्रकार बैठ जाते हैं कि उन्हें कोई नहीं पहचान सकता है । यह
 तो कुण्ड की अद्भुत बनावट है ॥२२॥

धर्म-अधर्म निर्णय करने में परम निपुण जन धर्म साधन में
 तत्पर रहें, कोई योगसाधन करते रहें, और कोई मन को ब्रह्मस्वरूप
 में लगाते रहें, और कोई भाग्यवान् भक्तिसुख का ही स्पष्ट अनुभव
 करते हुए परम प्रसन्नता का लाभ करते रहें । परन्तु इन बातों में
 मेरी किञ्चित् मात्र भी आस्था नहीं है । मेरा मन तो श्रीराधिका के
 सरोवर के बिना अन्य कुछ नहीं चाहता है ॥२३॥

मेरी रसना निरन्तर श्रीराधासरोवर के गुणों से अलंकृत रहै
 अर्थात् सर्वदा राधाकुण्ड के गुणों का कीर्तन किया करे । मेरा चित्त
 उद्भट प्रणय के साथ निरन्तर राधासरोवर का ही ध्यान किया करे,
 मस्तक अत्यन्त दीनता के साथ उसके लिये प्रणाम समूह को किया
 करे तथा दोनों कर्ण प्रतिदिन उसी की स्तुति का श्रवण किया करे ॥२४॥

दुष्टं मां विषयैर्हृतेन्द्रियगणं शश्वत्प्रलोभातुरं
 कामेनाकुलमानसं प्रतिलवं क्रोधाग्निना पूरितम् ।
 कृष्णप्रेमपराङ्मुखं यदि हहा वृन्दावनेशासरो
 हन्त त्वं समुपेक्षितासि भविता का तदि मेऽन्या गतिः ॥२५॥
 गायन् श्रीवृषभानुजावरगुणान्प्रेमार्त्तिभिः कीर्त्तयन्
 गोष्ठाधीशकुमारमग्नहृदयो रोमाञ्चपुञ्जाञ्चितः ।
 औन्मुख्यं विषये त्यजन् वसति यः कुण्डे नरः सन्ततं
 राधादास्यरसं ददाति हि निजं तस्मै मुकुन्दान्विता ॥२६॥
 अन्योपास्तिपरा नरा जगति ये हन्त भ्रमन्ति भ्रमात्
 तान् स्मृत्वा मम मानसं नहि कदाप्याप्नोति खेदं खलु ।
 श्रीराधापदपद्मादास्यरसिकोप्यन्यत्र कुण्डादति
 प्रीतिं यः कुरुते तमेव पुरुषं जाने निजार्थच्छिदम् ॥२७॥

हे वृन्दावनेश्वरी के सरोवर ! यदि तुम विषयों से हत इन्द्रिय-
 वाले, दुष्ट, निरन्तर नाना प्रलोभनों में आतुर, काम से व्याकुलचित्त
 वाले, सर्वदा क्रोधाग्नि से जर्जरित, कृष्णप्रेम में पराङ्मुख हमें
 उपेक्षित कर रहे हो तब हाय हाय ! मेरी और क्या गति होगी ?
 अथवा तो तब भी तुमको छोड़कर मेरी अन्य गति है ही क्या है ? ॥२५॥

जो मनुष्य श्रीवृषभानुनन्दिनी के श्रेष्ठ गुणों का प्रेमातुरता के
 साथ कीर्तन करता हुआ गोपराजनन्दन में मग्न हृदय तथा रोमाञ्च
 पुंज से भूषित होकर तथा विषय में आसक्ति को छोड़ कर निरन्तर
 राधाकुण्ड में वास करता है, उसे श्रीराधिका मुकुन्द के साथ अवश्य
 अपने दास्यरस को प्रदान करती हैं ॥२६॥

इस जगत् में बहुत से मनुष्य औरों की उपासना करते हुए भ्रम
 से भ्रमण करते फिरते हैं । उनका स्मरण करके मेरा मन कभी भी

राधादास्यरसाभिलाषसहितं चेन्मानसं मानवा-
स्तर्हि श्रीवृषभानुजासरसिका वासं कुरुष्वं न किम् ।
स्नेहेनात्रकलेवरे पदवरे युष्माभिरायाति ते
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरी सुकरुणा पूर्णा ध्रुवं भाविनी ॥२८॥

राधाकुण्ड सकुण्ड एव भवतो रम्यां स्तुतिं यो नरः
श्रुत्वा नन्दितमानसो नदि भृशं स्वीयं शिरो धूनयेत् ।
यस्त्वद्वासिषु दोषदृष्टिमसकृत्कुर्वीत हा तेन तु
व्यर्थं क्लेशभरो व्यधापि जननीकुक्षेः किमर्थं किल ॥२९॥

गान्धर्वासरसि त्वयि श्रुतिशिरोमृग्याः स्रवन्ति स्फुटं
सत्प्रेमामृतसागराः खलु सदा चित्रं सुसंख्यातिगाः ।

खेद को प्राप्त नहीं होता है । परन्तु राधा के पादपद्मदास्य में रसिक
जो व्यक्ति राधाकुण्ड को छोड़कर अन्यत्र अत्यन्त प्रेम करता है उस
मनुष्य के लिये ही मुझे अत्यन्त खेद रहता है । क्योंकि वह अपने
स्वार्थ का छेदन करने वाला है ॥२७॥

हे मानवगण ! यदि श्रीराधादास्य रस में अभिषिक्त होने के लिये
मन में इच्छा है तब श्रीवृषभानुनन्दिनी की सरसी में क्यों नहीं वास
करते हो । यदि राधाकुण्ड में प्रीति के साथ वास कर सकते तो
अवश्य इसी शरीर में श्रीराधिका दर्शन देंगी तथा भविष्य में उनकी
पूर्ण करुणा होगी ॥२८॥

हे राधाकुण्ड ! तुम्हारी मनोहर स्तुति को सुन कर जो मनुष्य
प्रसन्न हृदय होकर बारम्बार अपने मस्तक को नहीं हिलाया है तथा
जो तुम्हारे तट में वास करने वाले मनुष्यों में बारम्बार दोष दृष्टि
करता रहता है, हाय ! उसने वृथा ही मातृगर्भ में जन्म लिया है ॥२९॥

हे माते ! राधिकासरसि ! तुम में निरन्तर उपनिषद् मृग्य
असंख्य सत्प्रेमामृत समुद्र विचित्ररूप से बहते रहते हैं । उनसे समस्त

तेषां पूरयतां समस्तपृथिवीं माधुर्यलेशोऽपि मे
स्वीयस्योपरि नापतञ्जननि ते किं युक्तमेतत्तव ॥३०॥

वृन्दारण्यविलासिनीनलिनि ते कारुण्यमत्यद्भुतं
श्रुत्वा नीचतमोऽपि धाष्टर्यवलितो वासं त्वयि प्रार्थये ।
त्वं चेन्निघृणतां करोष्यह दहा श्रीराधिकामानिते
मातस्तर्हि गतिर्हि नास्ति जगति क्वापीति मन्ये ध्रुवम् ॥३१॥

श्रीराधानलिनि स्वकीयकरुणां कर्तुं न चेदिच्छसि
वासं गौरवमेव मन्मनसि किं सर्वाधिकं स्वं त्वया ।
तत्त्वं मां निखिलाधमाधियमपि स्वान्तेऽभिमानावृतं
गेहे पर्णकृते तटे विरचिते मातः सुखं वासय ॥३२॥

पृथिवी प्लावित हो गयी है । परन्तु हाय ! निजजन मुझ में माधुर्य
का लेश मात्र भी पतित नहीं हुआ है । अर्थात् मैं उस माधुर्यलेश से
वञ्चित रहा । ऐसा तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥३०॥

हे वृन्दावनविलासिनी श्रीराधिका की सरसि ! तुम्हारी करुणा
अत्यद्भुत है ऐसा सुन कर नीच से भी नीच मैं धृष्टता के साथ तुम
में वास की प्रार्थना कर रहा हूँ । हे राधिका के द्वारा सन्मानित माते
राधासरसि ! यदि तुम दया नहीं करती हो तो फिर इस जगत् में
कहीं भी मेरी गति नहीं है ऐसा निश्चय है ॥३१॥

हे राधिकासरसि ! यदि तुम अपनी करुणा को नहीं करना चाहती
हो तो “ तुम में वास करना ही परम गौरव का विषय है ” ऐसा
सर्वाधिक सिद्धान्त ही हमारे मन में क्यों उदय कराती हो ?
राधाकुण्डवास ही सर्वोपरि है केवल यह मेरी धारणा मात्र क्या कर
सकती है ? अतः हे मात ! अधम से अधम बुद्धिवाला, अभिमान से
आवृत हृदय वाला मुझ को अपने तट पर पर्णकुटी में सुख के साथ
वास दीजिये ॥३२॥

गान्धर्वार्घिसरोजदास्यजलधौ मग्नान्ब्रजेन्दुप्रियान्
आर्यान् स्वीयतटे निवासयसि यत् किं तत्र चित्रं महत् ।
नीचं मूढतमं भवे निपतितं दीनं विषादातुरं
मामंगीकुरुषे यदा तव दयां मन्ये तदाहं सरः ॥३३॥

श्रीगोपेन्द्रतनूजपूजनविधिं स्वान्तातिदोषापहं
जाने नाहमपारदुःखनिवहैः संसारजातैर्वृतः ।
तद्दीनं परिलोक्य मां विरहितं भक्त्या हरेः स्वे तटे
वासं देहि रसं निकुञ्जरमणप्रेम्णः सुविस्तारय ॥३४॥
तत्रत्यान्पशुपक्षिवृक्षनिचयान् सर्वास्तथा मानवान्
श्रीराधापरिवारचिद्घनतनून् संचिन्तयन्नादरात् ।

हे सरोवर ! जो तुम राधिका चरण कमल के दास्यसागर में
निमग्न, ब्रजेन्द्रनन्दन के प्रियजनों को अपने तट पर निवास कराते
हो, इस में तुम्हारी क्या महान् आश्चर्य्यता है अर्थात् कुछ नहीं है ।
हाँ यदि नीच, अत्यन्त मूढ़, संसार में पतित, दीन, विषाद से आतुर
मुझ को जब अंगीकार करो तब ही तुम्हारी दया समझें ॥३३॥

हे राधाकुण्ड ! मैं संसार में उत्पन्न होकर अनन्त दुःखों से
आवृत होकर हृदय के अनन्त दोषों के नाशक, ब्रजराजनन्दन की
पूजाविधि को नहीं जानता हूँ । अतः मुझको दीन जानकर हरिभक्ति
युक्त अपने तट में वास दीजिये तथा मेरे हृदय में निकुंज विलासमय
प्रेमरस का विस्तार कीजिये ॥३४॥

मैं कब प्रेम के साथ वृषभानुनन्दिनी की सरसी में वास करूँगा
तथा वहाँ के पशु-पक्षी-वृक्ष समूह तथा समस्त मनुष्यों को श्रीराधा
परिवार और चिद्घनशरीर रूप में समझ कर आदर पूर्वक चिन्तन

गोपालेन्द्रतनूजपूजनरतः प्रीतान्तरोऽहर्निशं
कुर्व्वे श्रीवृषभानुजासरसिकावासं कदा प्रेमतः ॥३५॥
गेहं पुत्रेषु तृष्णां स्वजनधनकलत्रेषु च स्नेहबन्धं
छित्त्वा त्यक्ताखिलेहो ब्रजपतितनयं गायमानः प्रमोदात् ।
श्रीराधापादपद्मं प्रणयरसभराच्चिन्तयन् चित्तमध्ये
तीरे कृत्वा निकेतं किशलयरचितं कुण्डवासी कदा स्याम् ॥३६॥
नीरान्तः प्रतिविम्बितां सुललितां वृक्षाटवीं सर्व्वतः
प्रेक्ष्य प्रीतिभरेण बल्लवकुलाधीशात्मज-स्फूर्तितः ।
स्वप्राणान्परविस्मयाच्चित्तमतिनिर्मज्जनीकृत्य किं
सोपानेषु लुठामि कुण्ड भवतः प्रेमाश्रुधाराङ्कितः ॥३७॥

करता हुआ अहर्निश गोपेन्द्रनन्दन की पूजा में रत होकर कृतार्थ
होऊँगा ॥३५॥

कब मैं गृह-पुत्र-कलत्र में तृष्णा के तथा निजजन-धन कुटुम्ब
में स्नेह के बन्धन को छित्त करके समस्त चेष्टाओं से रहित होकर
आनन्द पूर्वक ब्रजराजनन्दन का गान करता हुआ तथा प्रणयरस से
भरपूर होकर श्रीराधा के पादपद्मों का मन में चिन्तन करता हुआ
कुण्ड के तट पर किशलयों से पर्णकुटी बनाकर कुण्डवासी
बनूँगा ? ॥३६॥

हे राधाकुण्ड ! कब मैं जल में प्रतिविम्बित मनोहर वृक्षों को
गोपकुलेश्वर ब्रजराजनन्दन की स्फूर्ति मान से प्रीतिपूर्वक देखता
हुआ तथा औरों को विस्मित करता हुआ अपने प्राणों को न्यौछावर
करता हुआ आपकी सीढ़ियों में प्रेमाश्रुधारा का वर्षण के साथ लोट
पोट हूँगा ? ॥३७॥

गोपेन्द्रात्मजमंसदेशमिलितश्रीराधिकाप्रीवकं
स्मृत्वाश्रुणि बहन्तमन्तरगतप्रेमात्तिरोमाञ्चितम् ।
मामालोक्य तटे लुठन्तमसकृन्तामोद्विरन्तं हरेः
कारुण्यात्स्वलु दर्शयिष्यति कदा स्वीयस्वरूपं सरः ॥३८॥
श्रीगोष्ठेन्द्रसखात्मजाविरचितक्रीडासमूहवृत्तं
गान्धर्व्याप्रणयान्धगोकुलविधोरातन्द्रछन्दप्रदम् ।
माधुर्यामृतपुरमद्भुततमं सम्यक् सदैवोद्दिग-
च्छ्रोवृन्दाविपिनान्तरङ्गमुखदं भूयात् कदा मे सरः ॥३९॥
जेतुं शक्नोति मायां परुषमतिरुषा कुर्व्यती नर्त्तनं कः
शीर्षं घातैः पदानां हरिभजनविधावन्तरायप्रदात्रीम् ।
तद्गान्धर्व्यासरस्ते मुहुरतिविकलः संश्रयं हन्त कुर्व्ये
श्रीमद्वृन्दावनेशात्रजपतितनयौ स्फोरयान्तः कृपातः ॥४०॥

गोपराजनन्दन के स्कन्ध देश से संलग्न श्रीराधिका के ग्रीवाभाग का स्मरण कर अधुवारा को बहाने वाले, हृदयवर्त्ति प्रेमातुरता से रोमाञ्चित, बारम्बार श्रीहरि के नामों को ले लेकर तट पर लोट पोट होते हुये सुख को देख कर कब श्रीराधासरोवर करुणाद्र होकर अपने स्वरूप का दर्शन करायेंगा ॥३८॥

श्रीवृषभानुनन्दिनी के द्वारा विरचित क्रीडा समूह से व्यास, राधिका के प्रेम में दन्मदान्व, गोकुलचन्द्रमा को आनन्द प्रदान करने वाला श्रीराधासरोवर कब मेरे लिये वृन्दावनसम्बन्धी अन्तरंग सुख का प्रदान करेगा ॥३९॥

हरिभजनविधि में बाधा डारने वाली, शिर पर पौंवों को रखकर बहल नृत्यशीला, मायादेवी को कौन जीत सकता है ? अतः हे राधिकासरोवर ! मैंने अत्यन्त व्याकुल होकर तुम्हारा आश्रय लिया

प्रौढं मे वृषभानुवंशजमणेः श्रीमत्सरस्या बलं
जाने नान्यदहं मनागिति सदा गृह्णाभिमानं भजे ।
त्वं चेन्नादिशसि स्वकीयसुतदे वासं मुकुन्दप्रिये
मातस्तर्हि भविष्यति त्वयि न किं लज्जास्पदं खल्विदम् ॥४१॥
किं धर्मेण ममास्ति कृत्यमिदं किं योगेन किं सद्गुणैः
किं मे ब्रह्मसुखेन किं मधुरिगेध्यानादिनाप्यद्य च ।
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीसरसिकागर्वेण न क्वापि मे
चित्तं कुण्डरसामृताम्बुविभृतं सज्जत्यतीवाग्मदम् ॥४२॥
वृन्दारण्यविलासिनी तव मुदा कुञ्जेषु नन्दात्मजं
रम्यैर्हासविलासभावनिचयैः संमोहयत्यन्वहम् ।

है । तुम अपनी करुणा के द्वारा श्रीवृन्दावनेश्वरी तथा ब्रजराजनन्दन को हृदय में स्फूर्ति कराओ ॥४०॥

वृषभानुवंश की मणिस्वरूपा श्रीराधिका की सरसी हो मेरा प्रौढ बल है । मैं लेशमात्र भी अन्य कुछ नहीं जानता हूँ तथा तुम्हारा ही अभिमान के साथ भजन करता हूँ । हे सरसि ! तुम यदि अपने तट पर वास नहीं देती हो तो हे मुकुन्दप्रिये ! हे मात ! क्या वह तुम में लज्जा की बात नहीं है ? ॥४१॥

मेरे धर्मसाधन में क्या रक्ता है । नित्यकृत्य भी अति तुच्छ है । योगादि साधना तथा सद्गुणों से मेरा क्या होगा ? ब्रह्मसुख को भी मेरा हृदय नहीं चाहता है । अधिक तो क्या मुरारी के ध्यानादि से भी इष्ट सिद्धि नहीं हो सकती है । वृन्दावनेश्वरी की सरसी के अभिमान में मग्न मेरा चित्त अन्यत्र नहीं जा सकता है । चित्त तो अत्यन्त दन्मत्त होकर कुण्ड के रसामृत-समुद्र का पान कर रहा है ॥४२॥

हे वृषभानुनन्दिनी की सरसी ! वृन्दावन-विलासिनी श्रीराधा आनन्द के साथ तुम्हारे कुञ्जों में मनोहर हास्यविलासमय भावों के

तन्मां त्वं कुरु राधिकापदयुगे दास्याधिकारोत्सवैः
पूर्णं श्रीवृषभानुजासरसिके मा स्वाश्रितं संत्यज ॥४३॥
कृष्णांघ्र्यम्बुजसीधुमत्तहृदयास्वद्वाससक्तान्तराः
के वापुर्नहि राधिकापदयुगं मृग्यं तु वेदैरपि ।
तद्वृन्दाविपिनेश्वरीसरसिके स्वीयाश्रयस्यापि मे
दीनस्योद्दिगरेणे भविष्यति कियान् भारः प्रपन्नप्रिये ॥४४॥
श्रीकुण्डाश्रयवन्तमन्तरलसत्प्रेमाणमत्यादरात्
लोकेशाः प्रणमन्ति पद्मजमुखा हित्वाभिमानं निजम् ।
अन्यत् किं व्रजराजनन्दनशिरोलम्बाङ्घ्रिसद्यावकां
गान्धर्वासरसीरसी किल वशीकुर्वीत राधामपि ॥४५॥

द्वारा नन्दनन्दन को निरन्तर संमोहित करती हैं। अतः तम मुझको राधिका के चरणयुगल में दास्याधिकार रूप उत्सव से पूर्ण करो। निजाश्रित मुझे मत त्याग करो ॥४३॥

हे वृन्दावनेश्वरी का सरोवर ! श्रीकृष्ण के चरण कमल मधुपान से मत्तहृदय वाला, तुम्हारे तट पर वास करने में महान् आसक्त चित्त वाला कौन मनुष्य वेदों से मृग्य राधिकाचरण युगल का प्राप्त नहीं करता है ? अतः निजाश्रित इस दीन के उद्धार में तुम्हें क्या भार हो सकता है ? तुम तो प्रपन्नजन के परम प्रिय हो ॥४४॥

जो अत्यन्त आदर से हृदय में प्रेमोल्लास के साथ श्रीकुण्ड का आश्रय करता है वह परम भाग्यवान् है। ब्रह्मादि लोकपाल देवतागण भी निज अभिमान को छोड़ कर उसको प्रणाम करते हैं। अधिक क्या कहूँ-व्रजराजनन्दन के मस्तक पर अपने चरणों का महावर लगाने वाली श्रीराधिका को भी कुण्डवासी अपने वश में कर लेता है ॥४५॥

किं कृष्णस्यैव रूपं त्रिभुवनमनसो हारि किं यूथपायाः
प्रेमामूर्त्तः किमीष्टे किमु विजयते केलिरेवानयो वा ।
इत्थं यत्रैव राधा प्रणयसहचरी संचयामोदवृन्दाद्
वंभ्रम्यन्ते सुरम्यां प्रणमत सरसीं तां मंहद्भिः सुनम्याम् ॥४६॥
श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीहृदिगतं प्रेमैव कुण्डच्छलात्
मन्ये प्रासूवदन्तरेऽपरिमितं वृद्धं भृशं निर्गतम् ।
यद्गोपालवरेण्यसूनुसहितान् सर्वान् स्वशोभाचयै-
मूर्च्छां प्रापयति प्रमोदमुधया कृत्वा किल क्षालितान् ॥४७॥
छिन्धि स्नेहमिमं गृहेषु रुदतः स्त्रीपुत्रमित्रादिकान्
बन्धून् संत्यज विस्मर प्रिय मनः शास्त्रेषु सर्वज्ञताम् ।

अहो ! श्रीराधासरोवर का कैसा अद्भुत स्वरूप है। क्या त्रिभुवन मनोहारी श्रीकृष्ण का रूप ही कुण्ड रूप में विराजमान है ? अथवा यूथेश्वरी राधिका का प्रेम ही मूर्त्तिमान हो कुण्ड रूप में शोभायमान है ? अथवा दोनों की क्रीड़ा ही विजय को प्राप्त हो रही है ? इस प्रकार शंका करती हुई अतिशय आमोद के कारण राधिका की प्रणय-सखियाँ जहाँ आन्त होकर धूमती रहती हैं, महद्जनों के भी अत्यन्त नमस्कार योग्य उस मनोहर राधासरोवर के लिये प्रणाम करो ॥४६॥

मेरे मन में ऐसी धारणा है कि-मानो वृषभानुनन्दिनी के हृदयस्थ प्रेम ही कुण्ड के छल से संचयमान हो रहा है। वह अपरिमित रूप से बढ़ कर बाहर निकल रहा है। जिससे गोपराजनन्दन के सहित सबको अपनी शोभा समूह के द्वारा मूर्च्छित कराकर फिर प्रमोदमुधा के द्वारा धौत कर रहा है ॥४७॥

गृह के प्रति स्नेह-बन्धन का छेदन करो। रोने वाले स्त्री-पुत्र-मित्रादि बन्धुओं का त्याग करो। अरे प्रियमन ! शास्त्रों में अपनी सर्व-ज्ञता का जो अभिमान है उसे भूल जाओ। वृन्दावनविलासी राधा-

वृन्दारण्यविलासिपादनलिनप्रेमामृतानन्दं
नित्यं त्वं परिचिन्तयातिललितं श्रीराधिकायाः सरः ॥४८॥

भ्रंसिन्या ब्रजराजनन्दनपदप्रेम्णाः स्त्रिया रे मनः
स्नेहेनारचितैः सुनर्मनिचयैर्मा वञ्चनां प्राप्नुहि ।
नैवाकांक्षय पुत्रमित्रविभवानालोचयन्नश्वरान्
ध्याय त्वं वृषभानुजासरसिकां श्रीराधिकादास्यदाम् ॥४९॥

यत्कुञ्जेषु निजालिभिः परिवृता मध्यान्हकाले सदा
श्रीराधा ब्रजराजनन्दनयुता क्रीडार्थमागच्छति ।
आश्चर्य्यं नवनागरोऽपि कलनादाप्नोति यस्य श्रिय-
स्तच्छ्रीमद्वृषभानुजाप्रियतमं कुण्डं ममास्तां गतिः ॥५०॥

यस्मिन्मामकमेव सत्पदमिति श्रीराधिकाया भृशं
गूढाहंकृतिनन्वहं विलसति प्रेम्णायुताया हृदि ।

गोविन्द के चरण कमल के प्रेमामृत को देने वाला मनोहर राधासरोवर
का नित्य चिन्तन करो ॥४८॥

अरे मन ! ब्रजराजनन्दन के चरण कमलों के प्रेमधन को नष्ट कर
देने वाली स्त्रियों के परिहासमय स्नेह वचनों में फँस कर प्रेमधन से
वञ्चित मत हो । पुत्र-मित्र-वैभवों को नश्वर जान कर उनकी आकांक्षा
मत करो । निरन्तर राधादास्य प्रदानकारी वृषभानुनन्दिनी सरसी का
ध्यान करो ॥४९॥

जिनके कुंजों में मध्यान्ह के समय निज सखियों से घिरकर ब्रज-
राजनन्दन के साथ श्रीराधिका नित्यप्रति क्रीड़ा करने के लिये आती हैं
तथा नवनागर श्रीकृष्ण भी जिसका दर्शन कर आश्चर्य्य को प्राप्त होते
हैं वह श्रीवृषभानुनन्दिनी का अत्यन्त प्रिय श्रीकुण्ड ही मेरी गति होंवे
॥ ५० ॥

चित्राणां रचनाकृता सुविलसत्कुञ्जेषु यस्यालिभि-
स्तत्कुण्डं वृषभानुजात्रजविधुप्रीत्यास्पदं मे गतिः ॥५१॥

यत्कुञ्जेषु सुनन्दितौ परिलसद्वृन्दादिकालीगणौ
राधागोकुलनागरौ गलगतोद्वाहू मुदा क्रीडतः ।
तद्वृन्दावनधामवाममनिशं सोपानकैर्मण्डितं
यूनोः केलिचयैरलंकृतमलं कुण्डं सदा मे गतिः ॥५२॥

कुर्व्वाते जलकेलिमद्भुततमां यस्यां मुदा राधिका-
गोपालेन्द्रसुतौ स्वगोपनकरावजैः सुधीतासितैः ।
मग्नैः प्रेमरसाम्बुधौ सुमुदितैरालीसमूहैर्युतौ
तस्या हंत समाश्रयो भवतु मे श्रीमत्सरस्याः सदा ॥५३॥

जिसके लिये “ यह मेरा सर्वोपरि स्थान है ” ऐसा गूढाभिमान,
प्रेममयी राधिका के हृदय में विराजमान रहता है, जिसके कुंजों में
राधिका की सखियाँ भी नाना प्रकार के चित्रों की विचित्र रचना
करती हैं, वृषभानुनन्दिनी-ब्रजचन्द्रमा के प्रीति का विषय वह श्री-
राधाकुण्ड मेरी गति स्वरूप होंवे ॥५१॥

जिस के कुञ्जों में चारों ओर शोभायमाना वृन्दादिक सखियों के
साथ आनन्दित हो राधा गोकुलनागर परस्पर गलवाँह दे कर क्रीड़ा
करते हैं तथा वृन्दावन धाम में मनोहर, सोड़ियों से मण्डित, दोनों के
केलिसमूह से अलंकृत वह श्रीकुण्ड सर्वदा मेरी गति होंवे ॥५२॥

जिस में राधा गोपेन्द्रनन्दन आनन्द के साथ अद्भुत से अद्भुत
जलविहार करते हुए, पीत-नील कमलवन के बीच में छिप जाते हैं
तथा सखियों के साथ प्रेमरस समुद्र में डूब जाते हैं वह श्रीमत् राधा-
सरोवर मेरा आश्रय होंवे ॥५३॥

हस्ताभ्यां परिगृह्य नीरममलं संपातयन्तौ मिथः
 श्रीराधाव्रजमानवेशतनयौ लग्नार्द्रवस्त्रावृतौ ।
 अङ्गेभ्यः परितः प्रसर्पितरुची विक्रीडतो यज्जले
 सा श्रीमत्सरसी ममास्तु शरणं गान्धर्विकासेविनः ॥५४॥
 नीरे यस्य निमज्ज्य नन्दतनयो राधापदाम्भोरुहे
 संगृह्याकुलमानसां प्रणयतः कुर्वन् भयेन प्रियाम् ।
 उन्मज्ज्याथ सुहासयन् बिहरति प्रेयान् कुरङ्गीदृशां
 कुण्डं तद्विमलं गतिं भवतु मे गान्धर्विकायाः सदा ॥५५॥
 यन्नीरान्तरगानि पङ्कजकुलान्यादाय नालेषु तौ
 वृन्दारण्यविलासिनीव्रजावधू संताडयन्तौ मिथः ।
 नित्यं हन्त मुदा महाकुतुकिनौ भातो यदीये तटे
 तां राधासरसीं नतोऽस्मि सततं गान्धर्विकाप्राप्तये ॥५६॥

जिस में राधा-व्रजराजनन्दन अपने हाथों में पवित्र जल लेकर परस्पर के प्रति फेंकने लगते हैं तथा भीजे वस्त्रों से आवृत होकर जल-क्रीड़ा करते हैं, उस समय उनके अंगों से कान्तिलहरी छिटकर चार ओर फैल जाती है, वह श्रीमत् राधासरोवर ही मुक्त राधिका सेवापरायण के लिये शरण है ॥५४॥

जिस के जल में नन्दनन्दन डूब कर राधिका के चरण कमलों का धारण करते हुए उन को भय भीत करके व्याकुल कर देते हैं, फिर प्रिय श्रीकृष्ण जल के भीतर से निकल कर गोपांगनाओं को हँसाते हुए राधिका के साथ विहार करते हैं, वह विमल श्रीराधाकुण्ड मेरी गति होंगे ॥५५॥

जिसके जल में वर्त्तमान कमलों को लेकर श्रीराधा-व्रजराजनन्दन उनके नालों के द्वारा परस्पर-परस्पर की ताड़ना करते हैं तथा दोनों

यस्यां गोपमहेन्द्रनन्दतनयः कैवर्त्तकः स्नेहतो
 नावं चालयति प्रियां सुवदनां पश्यन्हसन्नर्मभिः ।
 तां श्रीमद्वृषभानुजाभिलषितां कुञ्जैरनन्तैर्वृतां
 श्रीराधा-सरसीं कदा पुलकितः स्यां प्रेक्ष्य नीचोऽप्यहम् ॥५७॥
 कोणस्थः शिखरद्युतेः सुतरणेनन्दात्मजः प्रेयसीं
 श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीं प्रणयतः संभीषयन्नाविकः ।
 यस्यां केलिकुलं करोति मुदितो राधामुखालोकनात्
 सा राधासरसी मयि प्रतनुतां कैकर्यमात्मेशयोः ॥५८॥
 यस्मिन् केलिनिकुंजवैभवभरं प्रेक्ष्याभिमानांचिता
 त्वं मद्धामगतां समृद्धिमतुलां पश्येत्क्षणानन्ददाम् ।

महान् कौतुक के साथ जिस के तट पर नित्य विराजमान रहते हैं उस राधासरोवर को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ कि जिस से शीघ्र ही राधिका की प्राप्ति हो सकती है ॥५६॥

जिस में गोपराजनन्द के तनय श्रीकृष्ण, सुमुखी प्रियाजी को देखते हुए तथा नर्म परिहास के द्वारा हँसते हुए स्नेह से माझी बन कर नाव चलाते हैं, उस वृषभानुनन्दिनी के द्वार अभिलषित, अनन्त कुञ्जों से आवृत, श्रीराधासरसी का अवलोकन कर नीच मैं कब पुलकायमान हो जाऊँगा ॥५७॥

पर्वत शिखर की भाँति चमकने वाले, नाव के एक कोने में मल्लाह रूप से बैठते हुए श्रीनन्दनन्दन, प्रिया वृन्दावनेश्वरी को प्रणय के साथ डराते हुए उन के मुख कमल के दर्शन से प्रसन्न होकर विविध क्रीड़ा विनोद करते रहते हैं वह श्रीराधासरसी मेरे प्राणाधार युगल में कैकर्यता का विस्तार करें ॥५८॥

जिस के केलिनिकुंजों के वैभव विस्तार का दर्शन कर श्रीराधिका गर्ववती होकर “आप मेरे धाम के नयनानन्दप्रद अतुल समृद्धि को

इत्थं नन्दसुतं मुदा कथयति श्रीराधिका तत्सरो
 दृष्ट्वाश्रूणि वहामि हन्त हृदये स्मृत्वात्मनाथौ कदा ॥५६॥
 यत्रत्यास्तु लताद्रुमाः सुललिता गान्धर्विकाप्रेयसः
 पुष्पाणां भरतो नता मृदुलसत्पत्रा मुदं कुर्वते ।
 यत्र श्रीवृषभानुजा विजयते साम्राज्यमत्तान्तरा
 कुण्डं तद्भविता कदा मम दृशोरानन्दकन्दप्रदम् ॥६०॥
 यत्रत्याः पशु-पक्षि-वृक्षनिवहा राधाचरित्राम्बुगौ
 मग्नाः श्रीवृषभानुजा पुरुकृपापूर्णान्तराः सन्त्यहो ।
 तद्वृन्दाविपिनेश्वरीप्रियतमं श्रीकुण्डमुद्वीक्ष्य ते
 गान्धर्वीव्रजचन्द्रयो हृदि कदा स्फूर्तिर्भवेन्मोददा ॥६१॥
 क्रीडा यस्य निकुंजकेषु ललिता वृन्दालिकालीगणैः
 सम्यक् कारितसंगयोरतद्दोः श्रीराधिकाकृष्णयोः ।

देखिये" इस प्रकार नन्दनन्दन को आनन्द पूर्वक कहने लगती हैं,
 अहो ! उस राधिकासरोवर के दर्शन कर मैं कब आनन्दाश्रुओं को
 बहाऊँगा तथा हृदय में दोनों का स्मरण करूँगा ॥५६॥

वह श्रीराधाकुण्ड कब मेरे नेत्रों को आनन्दप्रद होगा कि जहाँ
 स्वयं श्रीवृषभानुनन्दिनी साम्राज्य गर्व में मत्त हृदया होकर विराजमान
 रहती हैं, जहाँ के लता-वृक्ष परम मनोहर हैं, राधिका के परम प्रिय
 पात्र हैं, पुष्पों के भार से नम्र हैं तथा मनोहर पत्तों से आनन्द देने
 वाले हैं ॥६०॥

जहाँ के पशु-पक्षि-वृक्ष समूह राधाचरित्र सागर में निमग्न रहते
 हैं तथा वृषभानुनन्दिनी की प्रबल कृपा से पूर्ण हृदय वाले हैं, वृन्दा-
 वनेश्वरी के उस प्रियतम कुण्ड का दर्शन कर कब तुम्हारे हृदय में राधा-
 व्रजचन्द्र की प्रमोददायिनी स्फूर्ति उदय होगी ॥६१॥

प्रेमाक्ता लसति ध्रुवं सहचरीवृन्दस्य नित्यं न वा
 तद्दूरीकुरुतां ममान्तरगतावद्यं सदा श्रीसरः ॥६२॥
 यन्नीरैस्तु हरिन्मणिद्युतिधरैः श्रीराधिकामाधवौ
 कुर्वन्तावतिसेचनं विहरतश्चातुर्यकेलिनिधी ।
 खेदेनातिचिरं विहारभरजेनारक्तनेत्राम्बुजौ
 सा श्रीमत्सरसी रतिं वितनुतां गान्धर्विकापादयोः ॥६३॥
 कुंजे यस्य सदा व्रजेन्द्रतनयो वृन्दावनाधीशया
 प्रेमाभोधिमिमग्नमत्तहृदयो मोदोच्चयैः क्रीडति ।
 तां दृष्ट्वा सरसीं कदा पुलकितः श्रीराधिकाप्रेयसं
 स्मृत्वाहं विलुठामि मादितमना नीरैर्दृशोरञ्चितः ॥६४॥

जिस के निकुंजों में वृन्दादि सखियों के द्वारा संघटित विहारासक्त
 श्रीराधाकृष्ण की मनोहर क्रीड़ा होती रहती है, जहाँ सहचरियों की
 प्रेम सेवा निश्चल रूप से शोभायमाना है, वह श्रीराधासरोवर मेरे
 अन्तःकरण के मल को दूर करे ॥६२॥

जिस के इन्द्र नीलमणि कान्तिधारी जलराशि से केलिचातुरी के
 सागर राधिका-माधव परस्पर को अत्यन्त सींचते हुए विहार करते हैं
 तथा दोनों विहार की अधिकता के कारण उत्पन्न परिश्रम से रक्तनयन
 हो जाते हैं, वह श्रीमत्सरोवर राधिका पादपद्म में रति का विस्तार करें
 ॥ ६३ ॥

जिस के कुंजों में व्रजेन्द्रनन्दन, वृन्दावनेश्वरी के साथ प्रेमसागर
 में निमग्न, मत्त हृदय होकर अत्यन्त आमोद के साथ क्रीड़ा करते हैं
 उस राधिका सरोवर को देख कर मैं कब पुलकायमान होता हुआ
 राधाप्रिय श्रीकृष्ण का स्मरण कर उन्मत्त होकर लोट पोट हो जाऊँगा
 तथा नेत्र जलों से सिञ्चित सर्वांग होऊँगा ॥६४॥

यत्तीरे ललिता निकुञ्जवलिताश्रेणी सुरोचिश्चयै
वृक्षाणां मणिरागिणां सुलसिता भाति प्रियेणादृता ।
नीरान्तः प्रतिविम्बिता मृदुतरैः पत्रोच्चयैः संयुता
तद्वृन्दाविपिनेश्वरीचरणदं पश्यामि कुण्डं कदा ॥६५॥

पुष्पाणां निकरं चिनोपि बलतो ना पृच्छय मां किं सदा
कस्त्वं मे पदमेतदस्ति न परस्यात्राधिकारो मनाक् ।
इत्थं यत्र किशोरशेखरमणी केलिकलिं विन्दत-
स्तत्कुण्डं नयनाप्रतो मम कदा भाग्येन संयास्यति ॥६६॥

यस्याः कुंजगृहे व्रजेन्द्रतनयः श्रीराधिकाकुन्तलां-
स्तुल्यान् संविरचय कंकतिकया वध्नाति धम्मिल्लकम् ।
जानुद्वन्द्वगतां विधाय मुदितां कुर्वन् प्रियां नर्मभिः
सा श्रीमत्सरसी कदा मम दृशोः पत्थानमायास्यति ॥६७॥

जिस के तट में दीप्तिमान कान्ति घटा से परम मनोहर वृक्षश्रेणी
निकुंज रूप में विराजमान है, जो वृक्षगण इन्द्रनीलमणि सदृश हैं,
जिन का आदर स्वयं श्रीहरि करते रहते हैं तथा जो जल के बीच
प्रतिविम्बित और कोमल पत्रावली से परिशोभित हैं, ऐसे वृक्षों से
युक्त, वृन्दावनेश्वरी के चरणों को देने वाले उस श्रीकुण्ड को मैं कब
देखूँगा ॥६५॥

“हम को बिना पृछे तुम सदा बल पूर्वक पुष्पों का चयन करती
हो तुम कौन हो ? यह मेरा राज्य है, इस में औरों का किञ्चिन्मात्र
अधिकार नहीं है । ” इस प्रकार कहते हुए किशोर शेखर-रत्न दोनों
जहाँ केलिकलह करते रहते हैं, वह श्रीकुण्ड कब मेरे नयनों के आगे
प्रत्यक्ष होगा ॥६६॥

जिस के कुंज गृह में व्रजराजनन्दन विराजमान होकर श्रीराधा
के केश कलाप को कंधी से सँवार चोटी गूँथ देते हैं तथा प्रिया को

यत्कुंजे परिपक्तया सुललितक्रीडाभरे राधया
पादाब्जं लघु धारयन् स्ववदनं स्पृष्टुं छलादागतः ।
ज्ञात्वावेशभरेण नन्दतनयः संतर्जितोभूद्भृशं
तां दृष्ट्वा सरसीं कदा पुलकितैर्गात्रैर्युतः स्यामहम् ॥६८॥
यत्कुंजे विमलप्रमोदभरतो गान्धर्विका माधवं
पादान्ते पतितं विलोक्य कृपया मानं जहौ मानिनी ।
तत्कुण्डस्य प्रदर्शनेन मुदितः प्रेमाश्रुपूर्णक्षणः
स्वीयं जन्म कृतार्थतापदमितं ज्ञास्यापि किं भाग्यवान् ॥६९॥
यत्कुंजे वृषभानुजा दृढतरं मानाग्रहं प्राग्रहीत्
गोष्ठावीशसुतेन चाटुनिवहैरप्यर्थमाना यदा ।

दोनों जंघा के मध्य में बिठा कर नर्म परिहास के द्वारा आनन्द प्रदान
करते हैं, वह श्रीसरोवर कब मेरे नयनों के आगे प्रत्यक्ष होगा ॥६७॥

जिस के कुंज में जलक्रीड़ा के उपरान्त क्रीडासक्ता राधिका,
श्रीनन्दनन्दन के चरण कमलों को धारे-धीरे उठाते हुए अपने बदन
का स्पर्श करने के लिये छल से आते हुए जान कर आवेश के साथ
बारम्बार तर्जन करती हैं, उस राधाकुण्ड का अवलोकन कर मैं कब
पुलकित शरीर हूँगा ॥६८॥

जिस के कुंज में मानिनी राधिका विमल प्रमोद की अधिकता के
कारण चरण सन्मुख पतित श्रीमाधव को देख कर मान का परित्याग
कर देती हैं, उस राधाकुण्ड के दर्शन से प्रसन्न होकर तथा प्रेमाश्रु-
परिपूर्ण नयन होकर भाग्यवान् मैं अपने जन्म को सार्थक मानूँगा ॥६९॥

जिस के कुंज में गोपराजनन्दन के द्वारा मनोहर चाटु वचनों से
प्राथर्यमाना होने पर भी वृषभानुनन्दिनी अत्यन्त मानिनी हो जाती है,
उस समय मान के आग्रह से उनका मुख कमल अपूर्व शोभा को

तद्य प्रे वदनं निजं सुललितं पश्येति सख्याकृते
 रम्यादर्शले स्मितं कृतवती प्रेक्षे कदा तत्सरः ॥७०॥
 यत्कुंजे परिधूर्णितः प्रियतमामालोक्य नन्दात्मजो
 नाज्ञासीत्पतितं करान्मणिमयं वेणुं च पीताम्बरम् ।
 राधैषा समुपस्थिता किमु मनः स्वस्थो भवेत्थं घृणा
 संक्लिद्यद्विरयावदत्तदमलं पश्यामि कुण्ड कदा ॥७१॥
 कुंजे यस्य मुकुन्दचन्द्रमुखतः संनिस्तुतं वंशिका-
 नादं श्रीवृषभानुजा समभवत् श्रुत्वा सुधूर्णकुला ।
 सख्या पाणितलेन संभ्रमभरात्संभालिता तस्य किं
 गान्धर्वासरसः प्रदर्शनभवैर्जाड्यैर्वृतः स्यामहम् ॥७२॥

धारण कर लेता है । तब सखियाँ दर्पण लेकर “एक बार मुख कमल का अवलोकन तो कीजिये” ऐसा कहती हुई सामने रख देती हैं तथा राधिका उस दर्पण में अपने क्रोधयुत मुख का अवलोकन कर संकुचित हो मन्दहास्य करने लगती हैं, उस मनोहर सरोवर को मैं कब देखूँगा ॥ ७० ॥

जिस के कुंज में प्रिया श्रीराधिका का दर्शन कर नन्दनन्दन का मस्तक धूमने लग जाता है और उन के हाथों से मणिमयवेणु गिर पड़ता है तथा शरीर में पीताम्बर अलग हो जाता है तथा “यह देखो श्रीराधिका उपस्थित हो गई हैं, तुम्हारी ऐसी दशा क्यों होने लगी ? सुस्थ होओ” इस प्रकार प्रेमविह्वल होकर गद्गद् वचन बोलते हुये अपने को सम्हालते रहते हैं, उस विमल सरोवर का मैं कब अवलोकन करूँगा ॥७१॥

जिस के कुंज में मुकुन्दचन्द्र के मुखारविन्द से निर्गत वंशोनाद का श्रवण कर श्रीवृषभानुनन्दिनी धूर्णायमाना हो जाती हैं तथा

यत्तीरे कलहंसपंक्तिषु नवान् मुक्ताफलानां चयान्
 सच्छिन्द्रान्परिवेषयत्यतिरसाद् वृन्दावनाधीश्वरी ।
 आदायालिकरद्वयात्सुहृदसितैरानन्दिता प्रेयस-
 स्तत्कुण्डं परिलोक्य भाग्यममितं मन्ये कदाहं निजम् ॥७३॥
 श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीं स्वमनसि स्मृत्वा व्रजेन्द्रात्मजो
 राधेत्यक्षरयोर्युगं जपति यत्कुञ्जे सुरोमाञ्चितः ।
 तत्रागत्य ततः प्रिया प्रकुरूपे किं मन्त्रमित्थं गिरा
 नर्म्माण्यातनुते मुदा सरासकां पश्यामि तां कदाहम् ॥७४॥
 कुर्वाते सुलतागृहेषु ललितां क्रीडां मुदा संयुतौ
 केलिं गोकुलनागरौ परमया दास्यैकया सेवितौ ।

सखियों के द्वारा हाथों से सम्हाल ली जाती है उस राधासरोवर के दर्शन से उत्पन्न प्रेम-जड़ता से मैं कब विभूषित हो जाऊँगा अर्थात् राधा-कुण्ड का दर्शन करके मेरा शरीर कब स्तम्भित हो जायेगा ॥७२॥

जिस के तट में कलहंसों की पंक्ति इधर उधर डोलती रहती है, जिनको स्वयं श्रीवृन्दावनेश्वरी अत्यन्त रस के साथ सखियों के हाथों से नवीन मुक्ताफलों को लेकर उनको चुगाती हैं । वे सब मुक्ताफलों को चुगते हैं ऐसा देख कर परम प्रसन्न हो जाती हैं, उस श्रीराधाकुण्ड का दर्शन कर मैं कब अपने को अमित भाग्यवान मानूँगा ॥७३॥

जिस के कुंज में बैठ कर श्रीव्रजराजनन्दन अपने मन में वृन्दावनेश्वरी का स्मरण कर रोमाञ्चित कलेवर होकर “राधा” ये अक्षरों का जाप करते हैं तथा उस समय राधिका वहाँ आकर “आप क्या करते हैं ? किस मन्त्र का जप कर रहे हैं ? ” इस प्रकार पूछती हुई नर्म्म विस्तार करती हैं, उस रसमय राधाकुण्ड को मैं कब देखूँगा ॥ ७४ ॥

रन्ध्रं यस्तविलोचनैः प्रणयतो दृष्टौ सखीनां गणै-
स्तां राधासरसीं नतोऽस्मि विमलप्रेमाप्तयेऽइर्निशम् ॥७५॥
मर्हितात्ममुखाम्बुजे निजचयात्कस्तुरिकां निर्गतं
राधा कज्जलमातनोति नयने हस्ते गृहीत्वा प्रियम् ।
इत्थं यत्र वसन्तकेलिविहितानन्दौ किशोराधिपौ
भातस्तद्वरकुण्डमद्भुततमं वीक्षे कदा प्रेमतः ॥७६॥
ध्यायन् श्रीवृषभानुजां व्रजपतेः सूनुर्यदीये गृहे
दैवादागमने विलम्बितवतीमालोक्य स्विन्नः पुरा ।
ईशा मे समुपागतेतिवचनं शार्ङ्ग्याः समाकर्णयन्
एवास्मिन्मुदितान्तरस्तदमितानन्दं सरो मे गतिः ॥७७॥

जिस के लतागृहों में गोकुलनागर नागरी दोनों एकत्र हो कर मनोहर क्रीड़ा करते हैं, उस समय कोई एक परम अन्तरंगा सखी वहाँ रह कर उनकी सेवा करती है तथा सखियाँ लता के छिद्रों में नयन लगा कर इकटक देखने लगती हैं, उस राधासरोवर को विशुद्ध प्रेम प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥७५॥

श्रीराधा, कृष्ण को अपने मुख में कस्तूरी लगाते हुये देख कर अपने हस्त में काजल लेकर प्रिय के नयनों में लगाने लगती हैं, इस प्रकार बसन्तकालीन क्रीड़ा सुख में आनन्दित किशोरराज दोनों जहाँ विराजमान रहते हैं, उस अद्भुततम कुण्ड का दर्शन मैं कब प्रेम के साथ करूँगा ॥७६॥

जिसके गृह में बैठ कर वजराजनन्दन दैवगति से राधा आगमन में विलम्ब देख कर ध्यान करते हुए व्याकुल चिन्त हो गये थे तथा उस समय “मेरी स्वामिनी आ रही है” इस प्रकार सारिका के वचन सुन कर उस पर प्रसन्न हो गये थे, अमित आनन्द देने वाला वह श्रीराधासरोवर मेरी गति होंवे ॥७७॥

स्वीयोद्यानकरम्बकेष्ववचयं फुल्लप्रसूनाबलेः
कुर्वणा सुतमालकाकलनतो राधाभ्रमेणांचिता ।
अप्रे गोपकुलाङ्गनाविटमहो मुग्धा न किं पश्यथे-
त्युक्ते यत्र निजालिभिः प्रदक्षिता प्रेक्षे कदा तत्सरः ॥७८॥
राधामानदुराग्रहस्य कज्जनाखिन्ने व्रजेन्द्रात्मजे
प्रोत्थार्त्ता ललिता तदश्रुनिकरं संमृज्य यूथेश्वरीम् ।
सन्तर्ज्य प्रसभं सुमेलितवती यस्या निकुञ्जान्तरे
सैषा मे सरसी विलोचनप्रथं प्राप्स्यत्यसाधोरपि ॥७९॥
यस्या गोपमहेन्द्रसूनुमनिशं संलोक्य शोभाभरं
ध्यायन्तं स्वमनोहराद्भुतगुणात्प्रेमोद्गलद्राष्पणम् ।

जहाँ अपने वनों में प्रस्फुटित पुष्पों को वीनती हुईं सामने तमाल-वृक्ष को देख कर राधिका भ्रम में पड़ कर आलिंगन करने को दौड़ी हैं परन्तु तमालवृक्ष जान कर लज्जित हो गईं । उस समय श्रीहरि का आगमन जान कर “सामने गोपकुलांगनाओं के विट श्रीहरि विराजमान हैं हे मुग्धे ! तुम क्यों नहीं पहचानती हो” इस प्रकार सखियों के वचनों को सुन कर परम हर्षित हो गईं थी, उस राधाकुण्ड का दर्शन हमें कब होगा ? ॥७८॥

राधिका के प्रवल दुराग्रहयुत मान को देख कर वजराजनन्दन खिन्न हो गये । उस समय ललिता श्रीकृष्ण के अश्रु का माज्जन करती हुई यूथेश्वरी को डाँटने लगी । इस प्रकार श्रीहरि व्याकुल होकर जिस के तट कुंज में पड़े रहें, वह श्रीराधासरसी असाधु हमारे नयन पथ में क्या प्राप्त होगी ? ॥७९॥

जिसकी अद्भुत शोभावली का दर्शन करते हुए श्रीकृष्ण मुग्ध होकर ध्यान करने लगे तथा स्वयं मनोहर अद्भुत गुणों से परिपूर्ण

आगत्य प्रणयेन गरुडफलके स्पृष्ट्वा स्वनेत्रेण तं
राधा बोधयति प्रियं सरसिका भूयाद्गतिः सा मम ॥८०॥

यत्कुञ्जस्य लतासु पुष्पविभवं दृष्ट्वा प्रहर्षान्विता
राधा माधवमादिशत्यवचयं कर्तुं प्रसूनावलेः ।
उत्तंसं विरचय्य वर्यकुसुमैस्तेनाहतं वीक्ष्य सा
संमोदादभिनन्दनं प्रकुरुते बोधे सरस्तत्कदा ॥८१॥

श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीगुणगणान् गायन्ब्रजेन्द्रात्मजो
वंश्या यत्र विराजते सुविहगैर्हंसादिभिर्वेष्टितः ।
अर्द्धामीलितलोचनैः प्रमुदितैर्गानामृतोन्मादितै-
स्तां राधासरसीं कदा जनुरिदं दृष्ट्वाभृतं मानये ॥८२॥

होने पर भी आज राधा प्रेम में विह्वल होकर जिस कुंड के तट पर
पड़े रहे तथा रसिकनी श्रीराधिका वहाँ आकर प्रणय से श्रीकृष्ण के
गरुडों का स्पर्श कर प्रबोध देने लगीं, वह श्रीराधासरोवर मेरी गति
होंवे ॥८०॥

जिसके कुंजों की लताओं में पुष्पवैभव देख कर श्रीराधिका
प्रसन्न होकर पुष्पों की बीन लाने के लिये माधव को आदेश करती है
तथा श्रीहरि आदेश पाकर मनोहर उत्तम पुष्पों से शिरोभूषण बना
कर जब सामने लाते हैं तब उस समय श्रीराधा आनन्द के साथ अभि-
नन्दन करती है, उस राधिकासरोवर का मैं कब दर्शन करूँगा ॥८१॥

जहाँ ब्रजराजनन्दन वंशी के द्वारा राधिका के गुणों का गान करते
हुये विराजमान रहते हैं तथा हंसादि पक्षी-कुल नेत्रों को आधा मूँद
कर प्रमुदित, गानामृत से उन्मादित होकर उनको घेर लेते हैं, उस
राधासरसी को देख कर यह मेरा शरीर कब कृतकृत्य हो जायेगा ? ॥८२॥

गोष्ठाधीशसुतेन शिक्षितमतिप्रोद्यन्मति यद्गृहे
दत्तं निष्ठगिरं शुकं सुरुचिरं वृन्दावनाधीश्वरी ।
रक्षित्वात्मकराम्बुजे प्रणयतः प्राणप्रियस्योन्मदा
प्रेमाणं परिपृच्छति स्वविषयं प्रेक्षे कदा तत्सरः ॥८३॥
यस्याः श्रीवृषभानुजाव्रजविधू कुञ्जे प्रमोदावृतौ
पुष्पाणां मृदुलैः सुकन्दुकचयैः संताडयन्तौ मिथः ।
केलिं तौ कुरुतः सखीसमुदयान् विस्मापयन्तौ निजान्
श्रीराधासरसी भविष्यति कदा नेत्राप्रतः सा मम ॥८४॥
भृंगं यज्जलसंस्थपंकजकुलं त्यक्त्वागतं स्वोन्मुखं
वीक्ष्य त्वं मधुसूदनेहपुरतो रे धूर्त किं धावसि ।
इत्युक्ते प्रिययापसारयसि किं राधे त्वदेकाश्रयं
मामिस्थं वदति स्म नन्दतनयः कुण्डं गतिस्तन्मम ॥८५॥

गोपराजनन्दन के द्वारा शिक्षा प्राप्त, अत्यन्त विचक्षण बुद्धिवाला,
बोलने में अति चतुर दत्त नामक मनोहर शुक को वृन्दावनेश्वरी अपने
करकमलों में रख कर प्रेमोन्मत्ता होकर जहाँ प्राणवल्लभ के निज
विषयक प्रेम को पूछती रहती हैं, मैं कब उस राधिका सरोवर का
अवलोकन करूँगा ॥८३॥

जिसके कुंज में वृषभानुनन्दिनी और ब्रजचन्द्र आनन्दित होकर
पुष्पों के द्वारा विरचित कोमल गेंदों से परस्पर को ताड़ना करते हुए
निज सखियों को चकित कर विविध क्रीड़ा करते हैं, वह श्रीराधासरसी
कब मेरे नेत्र पथ में उपस्थित होगी ॥८४॥

जिसके जलस्थित पंकज समूह का त्याग कर अपने ओर आते हुये
भ्रमर को देख कर “हे धूर्त मधुसूदन ! यहाँ मेरे आगे क्यों उड़ते हो”
इस प्रकार राधिका के द्वारा निषेध किये जाने पर “हे राधे ! एक मात्र
तुम्हारे आश्रित मधुसूदन हम को क्यों दूर करना चाहती हो ? अर्थान्तर

यस्मिन्नन्दसुतोऽधरे विनिहितं वेणुं शनैर्वादयन्
 तिष्ठन्नीपतरोस्तले प्रियतमां राधां स्मरन् सन्ततम् ।
 मिष्टं काञ्चननूपुरस्य निनदं श्रुत्वैव संमोहितो
 व्यग्रोऽभूत्सरसी भविष्यति कदा नेत्राग्रतः सा मम ॥८६॥
 यस्या गुल्मलता घनोदवसिते राधां ब्रजेन्द्रात्मजो
 होल्यां रेचकधारयार्द्रवसनां कृत्वा यदा संस्थितः ।
 तर्ह्यालीभिरितस्ततो मृदुतरैश्चूर्णैरभूत्ताडित-
 स्तां श्रीमत्सरसी कदा नयनयारग्रे विधास्ये मुदा ॥८७॥
 यस्या मंजुलमन्दिरोदरगतो राधागतिं मानयन्
 श्रुत्वा नूपुरनादमुत्कलकया निःसृत्य कुंजाद्वहिः ।
 दृष्ट्वा श्रीवृषभानुजामुखविधुं प्राप्नोति हर्षं हरिः
 सा रम्या सरसी ममापि पतितस्याग्रे कदा यास्यति ॥८८॥

मैं मधुसूदन अर्थात् भ्रमर को क्यों उड़ाना चाहती हूँ” ऐसा श्रीकृष्ण कहने लगते हैं वह राधाकुंड मेरी गति हो ॥८५॥

जहाँ नन्दनन्दन अधर में विराजमान वेणु का धीरे धीरे वादन करते हुए कदम्बवृक्ष के नीचे विराजित होकर निरन्तर प्रियतमा राधिका का स्मरण करते करते हठात् मधुर से मधुर सुवर्णनूपुरों के शब्दों को सुन कर राधा का आगमन जान कर मोहित हो व्यग्र हो जाते हैं, वह राधासरसी मेरे नेत्र पथ में कब गोचर होगी ॥८६॥

जहाँ के गुल्म-लताओं में छिप कर ब्रजराजनन्दन होली के समय पिचकारियों की धारा से राधिका के वस्त्रों को भीजा कर जब खड़े हुये तब सखियों ने इधर उधर से आकर उन्हें घेर लिया तथा कोमल गुला-लादि चूर्ण को उन पर उड़ाया, वह श्रीमत् सरसी कब नयनों के आगे उदय होकर आनन्द प्रदान करेगी ॥८७॥

जिसके मनोहर मन्दिर के भीतर विराजमान होकर श्रीहरि, राधा के आगमन को जान कर, उनके नूपुर शब्दों को उत्कंठा पूर्वक सुनते

वृक्षाः शक्रमणिप्रभाः परिवृता माणिक्यवल्लया क्वचित्
 क्वापि स्फाटिकवर्चसा सुलतया संवेष्टिता वै द्रुमाः ।
 केऽप्यन्ये शुकपक्षवर्णलसिताः श्यामैः प्रसूनै र्युताः
 श्रीवृन्दाविपिनेश्वरी-सरसिका-तीरे गता पान्तु वः ॥८६॥
 येषां पुष्पफलाश्रयं प्रमुदितो वीक्ष्य ब्रजेन्द्रात्मजः
 सार्द्धं राधिकयाभिनन्दति तले केलिं करोत्यन्वहम् ।
 ते वृन्दावननागराकलनजप्रोदाममोदोद्गतैः
 पत्रैरङ्कुरसंचयैर्विलसिताश्चित्ते स्फुरन्तु द्रुमाः ॥८७॥
 गान्धर्वागमनप्रतीक्षणकरो यन्मन्दिरे माधवः
 श्रीराधाप्रहितां प्रसूनशयनं कर्तुं सखीमागताम् ।

हुए बाहिर निकल आते हैं तथा राधिका के मुख कमल का दर्शन कर परम प्रसन्न हो जाते हैं, वह मनोहर सरसी मुझ पतित के आगे कब उदय होगी ॥८६॥

श्रीवृन्दावनेश्वरी की सरसी के तट पर विराजमान जो वृक्ष-गण कहीं तो सब इन्द्रनीलमणिमय हैं जिन से माणिक्यमयी लताएँ लिपटी हुई हैं, कहीं स्फाटिकमणिमयी लताओं से परम शोभायमान हैं तथा कोई-कोई तो श्याम पुष्पों से विभूषित शुकपक्षी के वर्ण की भाँति परिशोभित हैं । वे समस्त वृक्षगण तुम्हारी रक्षा करें ॥८६॥

जिनके पुष्प-फलों की शोभा का दर्शन करके ब्रजराजनन्दन प्रमुदित चित्त हो राधिका के साथ उनका अभिनन्दन करते हुए उनके नीचे निरन्तर क्रीड़ा करते रहते हैं और जो सब वृक्ष वृन्दावननागर के दर्शन से उत्पन्न अतिशय प्रमोद को प्राप्त पत्र-अङ्कुर समूह से विभूषित हैं, वे सब वृक्ष मेरे चित्त में स्फुरण होंगे ॥८७॥

जिसके मन्दिर में श्रीहरि राधागमन की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं और पुष्पशय्या रचने के लिये राधिका के द्वारा भेजी हुई सखी को देख

दृष्ट्वा स्वस्तमना बभूव करणं तल्पस्य यत्तः स्वयं
तद्गोविन्दकलाविलासवसति श्रीमत्सरः पातु नः ॥६१॥
श्रीमद्गोकुलनागरीमणिरतिप्रीता ब्रजेन्द्रात्मजं
वीक्ष्य स्वीयविलोकनेन विवशं स्वेदाम्बुपुरैर्वृतम् ।
कुर्व्वाणा वसनाञ्चलेन वदनाभोजस्य संमार्जनं
स्विन्नासीत्स्वयमेव यत्र सरसी सा पातु नः सन्ततम् ॥६२॥
पत्यङ्गे वृषभानुजा सुसनसां सुप्ता प्रिये पादयो-
स्तन्याने कुतुवात्स्मयन्त्यतितरां सबाहनं यद्गृहे ।
आवध्य भ्रुकुटीं ब्रजेन्द्रतनयं तर्जन्त्यसौ माधवे-
नावद्धाञ्जलिना स्ववक्षसि कृता तत्पातु नः श्रीसरः ॥६३॥
वर्षायां निजपीतवस्त्रसुवृतां कृत्वा प्रियां यद्गृहे
तस्थौ यर्हि लतान्तरालपतितैर्नारैर्युताङ्गः पृथक् ।

कर धीरज को धारण करते हैं तथा स्वयं ही शय्या रचने लगते हैं, वह गोविन्द के कलाविलास की निवासस्थली श्रीमत्सरसी हम सब की रक्षा करें ॥६१॥

जहाँ गोकुलनागरी शिरोमणी श्रीराधिका अत्यन्त प्रसन्ना होकर अपने दर्शन से विवश, स्वेदयुक्त श्रीअंग वाले, श्रीवजराजनन्दन का दर्शन करके उनके मुख कमल को अपने वस्त्राञ्जल के द्वारा पोंछती हुई स्वयं स्वेदयुक्त हो जाती हैं वह श्रीसरसी निरन्तर हम सब का पालन करें ॥६२॥

पुष्पों की शय्या पर सोई हुयी श्रीवृषभानुनन्दिनी को देख कर “ हे प्रिये ! मैं आप के पादों का संवाहन करूँगा ” ऐसा कह कर श्रीकृष्ण अग्रसर हुए । श्रीराधा ने भ्रुकुटी मरोड़ कर माधव को तर्जना करती हुई उसका निषेध किया । माधव ने हाथों में राधिका को उठा कर अपने वक्ष में लगा लिया । जिसके गृह में ये सब बात होती हैं, वह श्रीराधासरोवर हमारा पालन करें ॥६३॥

शैत्यस्याभिनयं मृपैव कजयन् रीत्कारपुरैस्तदा-
वक्तः श्रीवृषभानुभूपसुतया तस्यै सरस्यै नमः ॥६४॥
ब्रह्मेन्द्रादिकदेवलोकचयतो वैकुण्ठमत्युत्तमं
तस्मादग्यूतमां मुकुन्दवसति श्रीद्वारकास्थां पुरीम् ।
तस्याः श्रीमथुरां परां सुमहतीं तत्रापि वृन्दाटवी-
मत्राप्यद्भुतराविकासरसिकां धन्यां हि मन्यामहे ॥६५॥
यन्नामश्रवणान्तरे निपतितं सर्व्वं मलं चेतसो
हन्ति प्रीतिभरेण संश्रुतममुं जन्तुं भवादुद्धरेत् ।
यद्दृष्टं वृषभानुजांघ्रिनलिनप्रोदामकैर्कर्य्यदं
तद्वर्य्याखिलधाम मूर्द्धसु सदा कुण्डं नरीनृत्यते ॥६६॥

वर्षाकाल में जिसके लतागृहों में श्रीहरि निज पीतवस्त्रों के द्वारा राधिका को ढक कर विराजमान होते हैं और जिस समय लता के छिद्रों में से जल गिरता है उस समय दोनों भीज जाते हैं और तब श्रीकृष्ण को सुना कर राधिका झूठ मूँठ ही शीत लगाने का अभिनय करती हुई सी सी करने लगती हैं, ऐसी-ऐसी जहाँ विविध लीलाएँ होती हैं, उस राधिकासरसी को मेरा नमस्कार है ॥६४॥

ब्रह्मा-इन्द्रादिक देवलोक समूह से वैकुण्ठलोक अत्यन्त उत्तम है, उस से आगे मुकुन्द की निवासस्थली श्रीद्वारकापुरी श्रेष्ठ है । उस से मथुरा-नगरी अत्यन्त श्रेष्ठ है । मथुरामण्डल में वृन्दावन सर्व्वश्रेष्ठ है । वृन्दावन में भी अद्भुत राधिका-सरोवर ही परम धन्यतम है ऐसा हम सब का सिद्धान्त है ॥६५॥

जिसका नाम कानों के भीतर प्रवेश करते ही चित्त के समस्त मलों का नाश कर देता है तथा प्रीति के साथ आश्रय करने वाले जीवों को संसार से उद्धार कर देता है और जिसका दर्शन करने पर वृषभानुनन्दिनी के चरण कमलों में प्रगाढ़ कैँकर्य्य प्राप्त होता है, वह श्रीराधा-कुण्ड श्रेष्ठ समस्त धामों के मस्तक पर विराजमान होकर नृत्य कर रहा है ॥६६॥

श्रीगान्धर्वव्रजेन्द्रात्मजपरिचरणाविष्टचेता नितान्तं
स्वान्तं शान्तं दधानः किल हृदयलसत्प्रेमपीयूषपूरः ।
स्नानं मानं प्रकुर्वन् हरिचरणरतेष्वातनोति प्रमोदाद्
यः कुण्डे तं हि राधा निजचरणयुगान्नेव भिन्नं करोति ॥६७॥
श्रीगान्धर्वपदाम्भोरुहगतहृदयः कुण्डतीरे कुटीरं
कृत्वा हित्वाखिलार्थं ब्रजविधुर्मामतप्रेमतश्चिन्तयन् यः ।
वासव्यासक्तचित्तो भवति नरवरस्तेन राधामुकुन्दौ
स्वादेशस्थौ कृतौ तत्प्रणयरभसोन्मादितौ गौरनीलौ ॥६८॥
वृन्दारण्येशभक्तिः कमलभवशिवेन्द्रादिभिर्देववृन्दै-
र्मृग्या यद्वासचेतः कर्माह तु जनं मार्गयन्ती सदास्ते ।
राधा यन्नामधेयश्रवणकरमपि स्वीयमामन्यतेऽमुं
तस्मै कुण्डाय नित्यं चटुभिरभिभृतां संनतिं हन्त कुर्मः ॥६९॥

जो व्यक्ति अनन्यभाव से श्रीराधा ब्रजराजनन्दन की परिचर्या में
आविष्ट चित्त होकर, अपने हृदय को शान्त रख कर तथा हृदय में
प्रेम पीयूष प्रवाह को धारण कर आनन्द से राधाकुण्ड में स्नान करता
हुआ और हरिभजन रत वैष्णव जनों के प्रति आदर भाव रखता हुआ
निवास करता है, श्रीराधिका निश्चय उस व्यक्ति को अपने चरण युगल
से पृथक् नहीं करती है ॥६७॥

जो नर श्रेष्ठ श्रीगान्धर्वा-राधिका के पद कमलों में हृदय देकर,
कुण्ड के तट पर एक कुटी बना कर, समस्त कामनाओं को छोड़, अपार
प्रणय के साथ ब्रजचन्द्र का चिन्तन करता हुआ निष्ठापूर्वक राधाकुण्ड
में वास करने की इच्छा रखता है वह राधा-मुकुन्द को वश में करके
अपना ब्राजाकारी बना लेता है तथा उसके प्रणयवेग से दोनों गौरनील-
उन्मादित हो जाते हैं ॥६८॥

वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण की भक्ति को ब्रह्मा-शिव-इन्द्रादि देवताएं
ढूँढते रहते हैं परन्तु प्राप्त नहीं होते हैं । परन्तु यहाँ तो राधाकुण्ड में
वास करने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को स्वयं वह भक्ति ढूँढती

श्रीकुण्डे संततं यो निवसति पुरुषस्तस्य किञ्चिन्नक्तुं
देवाः संघाः पितॄणां मुनिवरनिचयाः सन्ति सामर्थ्ययुक्ताः ।
कृष्णोप्येतं नियोगे विरचयति किमु श्रीव्रजेन्दुःप्रयुक्त-
मेकां देवीं किशोरीं परिजनसहितां राधिकामन्तरेण ॥१००॥
रम्या भ्राम्यन्मृगीभिः शुकमुखवयसां राधिका कृष्ण नामा-
न्युद्भुतप्रेमपूरादतिललितमलं गायतां संचयैश्च ।
वृन्दारण्येशचित्तेऽप्यभिमतपरमानन्दसिन्धोविधात्रीं
गान्धर्वक्रीडिताक्तामनुपमसरसीमद्भुतां संनमामि ॥१०१॥
राधागोपालमौलिप्रणयपदमतिप्रोल्लसद्बृक्षजालं
व्यालंविप्रेममालं किशलयशयनस्फुर्जिताम्भोजमालम् ।
फुल्लान्तप्रसूनावलिवलितमहो राधिकाभक्तिगम्यं
नम्यं दूरान्मुनीन्द्रैर्गिरिवरलसितं पातु वृन्दावनं नः ॥१०२॥

रहती है । जिस कुण्ड के नाम श्रवणकारी को भी राधा अपना जन करके
मानती हैं, उस कुण्ड के लिये नित्य स्तुति वाक्यों से हम नमस्कार
करते हैं ॥६९॥

श्रीराधाकुण्ड में जो पुरुष निरन्तर वास करता है, देवता-पितृ तथा
मुनिवरों का समूह उसका कुछ भी कर सकने में समर्थ नहीं होते हैं ।
ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण भी औरों की सेवा में उसको नहीं जाने देते हैं ।
केवल अपने परिजनों के साथ देवी श्रीराधिका किशोरी की सेवा में ही
उसे नियुक्त करते हैं ॥१००॥

भ्रमणशील मृगियों के द्वारा तथा अद्भुत प्रेम प्रवाह से राधा-
कृष्ण के नामों का मनोहर गान करने वाले शुकप्रमुख पक्षियों के द्वारा
मनोहरा, वृन्दावननाथ के चित्त में भी अमित परमानन्द सागर का
उत्पन्न करने वाली, राधिका की क्रीडाओं से संयुक्ता, अनुपम-अद्भुत
सरसी को मैं सम्यक् प्रकार से नमस्कार करता हूँ ॥१०१॥

जो राधा-गोपाल-शिरोमणि के प्रणय को देने वाला है, जिस में
उल्लसित वृक्षावली विद्यमान है तथा प्रेम की लतारूप मालाएं लम्बाय-

श्रीवृन्दाविपिनेश्वरी हृदि धृता येनातिभावोच्चयाद्

गोष्ठेन्द्रात्मजशीर्षमंजुविलसत्पादाब्जसद्व्यावकाः ।

तस्योपर्यसकृत्पतत्यनुपमा कृष्णस्य भक्तोत्तमैः

प्रार्थ्या लोकलवस्य चाटुनिचिता दृष्टिः कृपार्द्रा स्वतः ॥१०३॥

स्निग्धा नीचतमेऽपि नन्दतनयप्रेमासवोन्मादितः

यहि श्रीजनका कृपां विदधिरे तर्ह्येव सामर्थ्यवान् ।

कश्चिच्छ्रीवृषभानुजांघ्रिनलिनोद्दामाभिलाषोद्धतः

श्रीराधासरसीस्तवं हि कृतवान् गोवर्द्धनाख्यो जनः ॥१०४॥

इति श्रीवृन्दाविपिनेश्वरीचरणारविन्दमिलिन्देन गोवर्द्धनेन रचितः

श्रीराधाकुण्डस्तवोऽयं समाप्तिमगात् ॥

माना है, जिसकी-किसलय शय्या पर कमलावली शोभित है और जो प्रस्फुटित अनन्त पुष्पों से भूषित है, राधिका भक्ति से जिसकी प्राप्ति होती है, मुनीन्द्रगण के द्वारा जो दूर से प्रणम्य है तथा जिसमें गिरिराज गोवर्द्धन विराजमान है वह श्रीराधाकुण्ड संसर्गी श्रीवृन्दावन हम सब की रक्षा करें ॥१०२॥

गोपराजनन्दन के मस्तक पर मनोहर शोभायमान महावर रस को अपने चरणों में धारण करने वाली श्रीवृन्दावनेश्वरी को जिसने हृदय में धारण किया है उस भाग्यवान् व्यक्ति के ऊपर स्वतः कृष्ण के श्रेष्ठ भक्तों के द्वारा प्रार्थ्यमाना, अनुपमा, करुणार्द्रा, चाटुमय राधिका की दृष्टि अथवा राधासरसी की दृष्टि पड़ती है ॥१०३॥

नीचजनों के प्रति स्निग्ध, नन्दनन्दन के प्रेममधुपान में उन्मत्त, श्रीमत् पितृचरण ने जब कृपा की है तब उससे सामर्थ्यवान् होकर गोवर्द्धनभट्ट नामक इस व्यक्ति ने वृषभानुनन्दिनी के चरण-कमलों की उद्भट अभिलाषा से उद्धत होकर श्रीराधासरसीस्तव का निर्माण किया है ॥१०४॥

(अनुवादक-कृष्णदास)

